भाषा-चिन्तन की भारतीय परम्परा और आधुनिक भाषाविज्ञान

चित्तरञ्जन कर

भाषाविज्ञानक्षेत्रे भारतीयपरम्पराया औन्नत्यं कीर्त्तयत्येषः निबन्धः। अद्य भारते अमेरिका-भाषाविज्ञानपरम्परा प्रबला दृश्यते। पाश्चात्त्यभाषाविज्ञानं केवलम् अमेरिकादेशोत्पन्नमेव न। पाश्चात्त्यभाषाविज्ञानिभिः भारतीयं भाषावैज्ञानिकं चिन्तनं प्रशंस्यते। केवलं त एव अंशाः तैर्व्याख्याता येष्वस्माकं ध्यानमाकृष्टं नाभवत्। अस्मदाचार्याणां चिन्तनानुसारेण अस्माभिरुपायाः चिन्तनीया इति उपसंह्रियते प्रस्तुतौ।

भाषा-चिन्तन की भारतीय परंपरा अति प्राचीन है, जब कि आधुनिक भाषाविज्ञान का प्रारंभ १८वीं शताब्दी ई. से होता है। भारत में भाषा के संबंध में चिंतन की प्रक्रिया का स्पष्ट प्रमाण **ऋग्वेद** में मिलता है, जिस के दो सूक्तों में **'वाक्'** की उत्पत्ति मनुष्यकृत सिद्ध होती है। तदनुसार, अनुच्चरित या प्रकृत भाषा (हवा, पानी , साँप से संबंधित), आदिम भाषा (वस्तुओं, घटनाओं, गुणों का नामकरण), तथा मानव-निर्मित (उच्चरित) भाषा– ये तीन सोपान भाषा के क्रमिक विकास को दर्शाते हैं।

हमारे यहाँ षडंग विद्या की परंपरा थी– शिक्षा (ध्वनिविज्ञान), व्याकरण (पद एवं वाक्यविज्ञान), छंद (काव्य-रचना), निरुक्त (शब्द-व्युत्पत्ति) **ज्योतिष,** एवं कल्प, जिन में से प्रथम चारों भाषा से संबंधित हैं। यह ज्ञातव्य है कि भाषा-चिंतन स्वतंत्र न हो कर दर्शनशास्त्र एवं अलंकारशास्त्र के अंतर्गत समाविष्ट था, क्योंकि ये चारों अन्योन्याश्रित हैं, यद्यपि महर्षि पतंजलि का यह कथन उल्लेखनीय है कि **"प्रधानं च षट्सु अङ्गेषु व्याकरणम्"**। आनन्दवर्धन ने भी **"प्रथमे हि विद्वांसो वैयाकरणाः"** कह कर व्याकरण की महत्ता को रेखांकित किया है।

भाषा का प्रयोग करना और भाषा के बारे में जानना दो अलग-अलग बातें हैं, क्योंकि एक अपढ़ व्यक्ति भी अपनी भाषा का प्रयोग अच्छे, प्रभावशाली ढंग से कर लेता है, परंतु वह उसके बारे में नहीं जानता, ठीक उसी प्रकार जैसे हम अपने शरीर के विभिन्न अंगो से अनेक काम तो लेते हैं, परंतु हमे उनकी तकनीकी जानकारी नहीं होती। भाषा के बारे में जानना ही व्याकरण का लक्ष्य है, जो मूलतः भाषा की आंतरिक व्यवस्था है या उसकी प्रकृति है, तथा जिसे प्रत्येक भाषाभाषी व्यवहार से ही आत्मसात् कर के अपने मस्तिष्क में सुरक्षित रखता है और उसी के आधार पर भाषा-व्यवहार करता है। संरचनात्मक भाषाविज्ञान के जनक फ़दिनां द सस्यूर ने भाषा (La lanque) को अमूर्त और व्यापक बताया है तथा उसके व्यवहार (La parole) को मूर्त। दूसरे शब्दों में भाषा सामान्यीकृत व्यवस्था है तथा व्यवहार व्यक्तिनिष्ठ। ज्ञातव्य है कि सस्यूर पाणिनि के अधिकारी विद्वान् थे। इसी को आधार बना कर चान्स्का ने भाषा-सामर्थ्य और भाषा-व्यवहार की अवधारणा प्रस्तुत की। सस्यूर ने भाषाविज्ञान की वर्णनात्मक या संकालिक पद्धति के लिए पाणिनि के **'अष्टाध्यायी'** में निर्दिष्ट भाषा के व्यवहृत रूप को आधार बनाया।

आधुनिक भाषाविज्ञान में ध्वनिविज्ञान, ध्वनिप्रक्रिया, रूपविज्ञान, शब्दविज्ञान, पदविज्ञान, वाक्यविज्ञान एवं अर्थविज्ञान का समावेश होता है। पाणिनि के व्याकरण में इन सभी का विशद् विवेचन मिलता है जो सूत्रात्मक, संक्षिप्त एवं सुस्पष्ट है। इन नियमों का अनुसरण कर के संस्कृत का कोई भी शब्द, पद या वाक्य निष्पन्न किया जा सकता है। वाक्यविश्लेषण की पाणिनीय पद्धति (सुबंत + तिङंत) ही आधुनिक भाषाविज्ञान में 'संज्ञापदबंध + क्रियापदबंध' के रूप में स्वीकृत है, जिस ने वाक्य-विश्लेषण की पूर्ववर्ती धारणा– उद्देश्य + विधेय–को त्रुटिपूर्ण बता कर निरस्त कर दिया, क्योंकि उद्देश्य आदि वाक्य के निर्मापक घटक न हो कर प्रकार्यात्मक हैं। यह उल्लेखनीय है कि पाणिनीय वाक्य-विश्लेषण मात्र सुबंत + तिङंत तक सीमित नहीं है, अपितु उनकी आधारभूत संरचना के स्तर तक भी उसकी गति है। कारक-प्रकरण और विभक्ति-प्रकरण **'अष्टाध्यायी'** में अलग-अलग हैं तथा भिन्न-भिन्न विभक्तियों से एक-कारक तथा एक विभक्ति से भिन्न-भिन्न कारकों की सिद्धि का निर्देश आधुनिक रूपांतरक-प्रजनक व्याकरण (चॉम्स्की) तथा कारक-व्याकरण (फ़्रिलमोट) की अवधारणाओं से बहुत आगे ही नहीं है, अपितु अनेक दृष्टियों से तर्कसम्मत भी है।

पाणिनि ने **'अनभिहिते'** (२.३.१) अधिकार-सूत्र से **'चतुर्थी चाशिष्या-युष्यम् भद्रकुशलसुखार्थहिते'** (२.३.७३) तक विभक्तियों की चर्चा की है तथा

'कारके' (१.४.२३) से **'तत्प्रयोजको हेतुः च'** (१.४.३५) तक कारकों की परिभाषा की है। तदनुसार, कारक वक्ता की 'विवक्षा' (जोशी आदि, १९९५, IV, पृ॰ ८५) से निर्धारित होते हैं तथा आंतरिक स्तर और बाह्य स्तर के मध्यस्थ होते हैं (Kahrs, १९९८ : ५२)। दूसरे शब्दों में, अर्थ और वाक्य के बीच कारक सेतु बनते हैं। न तो चॉम्स्की का प्रजनक वाक्यविज्ञान और न ही फ़िलमोर का कारक-व्याकरण पाणिनि की विवक्षा-प्रणाली की समता कर सकता है। पाणिनीय कारक की एक और विशेषता है। वह है–क्रिया-रूप से कारक का व्यक्त होना:–

स: लिखति। (अभिहित कर्ता कारक)

असिश्छिनत्ति। (अभिहित करण कारक)

कट: क्रियते। (अभिहित कर्म कारक)

स्थाली पचति। (अभिहित अधिकरण कारक)।

यह ध्यातव्य है कि पाणिनी की **'अभिहित'** अवस्था की धारणा आधुनिक व्याकरण या भाषाविज्ञान में **'बाह्यस्तर'** है तथा **'अनभिहित'** अवस्था 'आंतरिक स्तर', जो निम्नानुसार है:–

विवक्षा (परिभाषा)	**अनभिहित अवस्था में कारकीय अभिव्यक्ति**
'स्वतन्त्र: कर्ता' (१.४.५४)	'कर्तृकरणयोस्तृतीया' (२.३.१)
'कर्तुरीप्सिततमं कर्म' (१.४.४९)	'कर्मणि द्वितीया' (२.३.२)
'साधकतमं करणम्' (१.४.४२)	'चतुर्थी सम्प्रदाने' (२.३.१)
'कर्मणा यमभिप्रैति स सम्प्रदानम्' (१.४.३२)	'अपादाने पञ्चमी' (२.३.२)
'ध्रुवमपायेऽपादानम्' (१.४.२४)	'सप्तम्यधिकरणे च' (२.३.३६) 'अकथितं च' (१.४.५१)
'आधारोऽधिकरणम्' (१.४.४५)	'अपादानादिविशेषैरविवक्षितं, कर्मसंज्ञं स्यात्' (गौण कर्म)

वस्तुत: चॉम्स्की और फ़िलमोर का महत्त्व व्याख्याकार के रुप में ही स्वीकार्य है, पाणिनि, पतंजलि, या कात्यायन, भर्तृहरि-जैसे प्रवर्तक आचार्य के

रूप में कदापि नहीं। पाणिनि, कात्यायन, और पतंजलि **'मुनित्रय'** कहे जाते हैं। कात्यायन ने पाणिनि के 'अष्टाध्यायी' के सूत्र पर **'वार्तिक'** लिखे। **"उक्तानुक्तदुरुक्तचिन्ता वार्तिकम्"** (काव्यमीमांसा, ५) कहा गया है। पतंजलि ने पाणिनि और कात्यायन के सूत्रों और वार्तिकों पर **'महाभाष्य'** लिखा। पाणिनि की यह परंपरा कैयट, नागेश, जयादित्य तथा वामन, भट्टोजिदीक्षित, कौंडभट्ट भर्तृहरि तक चलती चली जाती है। स्वयं पाणिनी ने अपने पूर्ववर्ती आचार्यों का नामोल्लेख किया है। आपिशालि, गार्ग्य, काश्यप, स्फोटायन, गालव, शाकटायन, शाकल्य, आदि निस्संदेह पाणिनि के पूर्ववर्ती आचार्य रहे होंगे। भारतीय भाषाचिंतन परम्परा की यह अक्षुण्णता शाश्वत है, जिस में पूर्ववर्ती आचार्यों की अच्छाइयों को स्वीकारते हुए किन्हीं अनुक्त एवं दुरुक्त तथ्यों को संशोधित-परिवर्धित करते हैं।

जैसा कि विदित है भारतीय अलंकारशास्त्र (काव्यशास्त्र) ..... भाषा परक है। अतः भाषा अध्ययन में भरत में लेकर पंडित राज तक के अवदान को समाहित करना श्रेयस्कर भी है और उपयोगी भी। भरत का **नाट्यशास्त्र** संकेतविज्ञान का उत्कृष्ट ग्रंथ है, जिस में अर्थ-संप्रेषण और निर्वचन की विभिन्न पद्धतियों का तार्किक विवेचन है। वक्रोक्ति, रीति, ध्वनि, अलंकार, औचित्य, आदि भाषाविवेचन के विविध आयामों की विशद् विवेचना करते हैं। शैली की आधुनिक धारणा में भारतीय काव्यशास्त्र की रीति, वृत्ति, एवं प्रवृत्ति की व्यापक संहति है, जिन्हें क्रमशः कवि/लेखक/वक्तागत, भाषा/शब्दगत एवं समाजगत कहा जा सकता है। (१९९५, पृ. ३०)।

'स्फोट' ध्वनि, वर्ण, पद, वाक्य, आदि के **'नाद'** से उत्पन्न वह सत्ता है जिस के द्वारा अर्थबोध होता है। भर्तृहरि की स्फोट-संबंधी धारणा सस्यूर एवं देरिदा की संकेतन एवं विखंडन की धारणाओं को पूर्वतः आत्मसात् करती हुई प्रतीत होती है, जिसमें स्वनिम, रूपिम, शब्दिम, वाक्यिम, अर्थिम की अमरीकी परिभाषाओं का पूर्णतः समाहार हो जाता है। (द्रष्टव्य–Matilal, १९९०)। पाणिनि पतंजलि, भर्तृहरि प्रभृति आचार्यों ने व्याकरण में तथा भरत, आनंदवर्धन, अभिनवगुप्त आदि काव्याचार्यों ने **'शब्द'** को भाषा का पर्याय माना है, जिसमें 'ध्वनि' व्यंजना का वाचक है तथा व्यंजना से स्फोट का संबंध किसी शब्द की बहुप्रयोजनीयता से अनेकार्थकता के मूल में प्रकरण या संदर्भ-भेद की भारतीय अवधारणा पाश्चात्य विद्वानों को भी मान्य है। रूपक, उपमादि अलंकार भाषा के अर्थ-व्यापार से संबद्ध हैं, जिनका विशद् विवेचन भारतीय काव्यशास्त्र में मिलता है।

पतंजलि का **'महाभाष्य'** मात्र पाणिनिकृत **'अष्टाध्यायी'** का निर्वचन या भाष्य नहीं; आधुनिक भाषाविज्ञान की आधारशिला भी है। पतंजलि के अनुसार, व्याकरण **'शब्दानुशासन'** है : **"अथ शब्दानुशासनं केषां शब्दानाम्। वैदिकानां लौकिकानां च। एकैकस्य शब्दस्य बहवोऽपभ्रंशाः। तद्यथा 'गो' इत्यस्य गावी गोणी गोवा गोपोत्तिलिकेत्येवमादयो बहवोऽपभ्रंशाः।"** आधुनिक भाषाविज्ञान की अनुप्रयुक्त शाखाओं– समाज भाषाविज्ञान, भाषा भूगोल– का उत्स क्या इसे न माना जाए! आधुनिक भाषाविज्ञान में भाषा के सभी रूपों का अध्ययन समाहित है।

आज भारत में भाषाविज्ञान की अमरीकी परंपरा ही प्रभावशील है। पाश्चात्य भाषाविज्ञान मात्र अमरीकी नहीं है। पाश्चात्य भाषाविज्ञान का योगदान मात्र इतना है कि उसने भारतीय मनीषा की तलस्पर्शी प्रतिभा को स्वीकारते हुए हमारे आर्ष ग्रंथों में से उन-उन बिंदुओं को व्याख्यायित किया, जिनकी ओर हमारा ध्यान सामान्यतः नहीं जाता रहा है। भाषा का कोई भी प्रकरण लें, उस में जितनी गहराई से भारतीय आचार्यों ने चिंतन-मनन किया है, वह आश्चर्यजनक है। हमें अपनी समृद्ध परंपरा की पहचान होनी चाहिए। और हमें पाश्चात्य विद्वानों के द्वारा बताई गई राह की अपेक्षा न कर के स्वयं अपनी राह ढूँढनी होगी– "उद्धरेदात्मनात्मानम्।"

सन्दर्भ

कर, चित्तरंजन (१९९५) : प्रारंभिक शैलीविज्ञान, रायपुर

Kahrs, Eivind (1998) : Indian Semantic Analysis: The 'nirvacana' tradition, Cambridge University Press

Joshi, S.D. and Roodbergen, J.A.F. (1995) : The Aṣṭādhyāyì of Pāṇini, (vol. IV), Sahitya Akademi, New Delhi.

Matilal, Bimal Krishna (1990) : The Word and the World : India's Contribution to the study of Language, Delhi-Oxford University Press.